

# संत सूरदासजी

-डॉ. विजय कुमार सिंह

सूरदासजी किसी विशेषण या उपाधि से समलंकृत करने में उनकी परमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति, अत्यन्त विशिष्ट कवित्व-शक्ति और मौलिक अलौकिकता की उपेक्षा की आशंका उठ खड़ी होती है; सूरदास पूर्ण भगवद्भक्त थे, अलौकिक कवि थे, महामानव थे। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के शब्दों में 'भक्ति के सांगर ओर श्रीगोसाईं विठ्ठलनाथ की सम्मति में वे पुष्टिमार्ग के जहाज थे। उनका सूरसागर काव्यामृत का असीम सागर है। महात्यागी, अनुपम विरागी और परम प्रेमी भक्त थे। भगवान् की लीला ही उनकी अपार, अचल और अक्षुण्ण सम्पत्ति थी।



दिल्ली से थोड़ी दूर पर सीही गाँव में एक निर्धन ब्राह्मण के घर संवत् 1535 वि. में वैशाख शुक्ल पंचमी को धरती पर एक दिव्य ज्योति बालक सूरदास के रूप में उतरी, चारों ओर शुभ्र प्रकाश फैल गया; ऐसा लगता था कि कलिकाल के प्रभाव को कम करने के लिये भगवती भागीरथी ने अपना कायाकल्प किया है। समस्त गाँववाले और शिशु के माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये। शिशु के नेत्र बंद थे, घर में सूर ने जन्म लिया। अन्धे बालक के प्रति उनके पिता उदासीन रने लगे, घर के और लोग भी उनकी उपेक्षा की करते थे। धीरे-धीरे उनके अलौकिक और पवित्र संस्कार जाग उठे, उन्होंने गाँव से बाहर एकान्त स्थान में रहना निश्चय किया। सूर घर से निकल पड़े, गाँव से थोड़ी दूर पर एक रमणीय सरोवर के किनारे पीपल-वृक्ष के तले उन्होंने अपना निवास स्थिर किया। वे लोगों को शकुन बताते थे और विचित्रता तो यह थी कि उनकी बतायी बातें सही उतरती थी।

एक दिन एक जमींदार की गाय खो गयी। सूर ने उसका ठीक-ठीक पता बता दिया। जमींदार उनके चमत्कार से बहुत प्रभावित हुआ, उसने उनके लिये एक झोपड़ी बनवा दी। सूरका यश दिन-दूना रात-चौगूना बढ़ने लगा। सुदूर गाँवों से लोग उनके पास शकुन पूछने के लिए अधिकाधिक संख्या में आने लगे। उनकी मान-प्रतिष्ठा और वैभव में नित्यप्रति वृद्धि होने लगी। सूरदास की अवस्था इस समय

अठारह साल की थी। उन्होंने विचार किया कि जिस मायामोह से उपराम होने के लिये मैंने घर छोड़ा, वह तो पीछा ही करता आ रहा है। भगवान् के भजन में विघ्न होते देखकर सूरने उस स्थान को छोड़ दिया। उनको अपना यश तो बढ़ाना नहीं था, वे तो भगवान् के भजन और ध्यान में रस लेते थे। वे मथुरा आये, उनका मन वहाँ नहीं लगा। उन्होंने गऊघाट पर रहने का विचार किया। गऊघाट जाने के कुछ दिन पूर्व वे रेणुकाक्षेत्र में भी रहे, रेणुका (रूनकता)- मैं उन्हें संतों और महात्माओं का सत्संग मिला; पर उस पवित्र स्थान में उन्हें एकान्त का अभाव बहुत खटकता था। रूनकता से तीन मील दूर पश्चिम की ओर यमुनातट पर गऊघाट में आकर वे काव्य और संगीत शास्त्र अभ्यास करने लगे। सूरदास की एक महात्मा के रूप में ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

पुष्टिसम्प्रदाय के आदि आचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य अपने निवास-स्थान अड़ैल से ब्रजयात्रा के लिए संवत् 1560 वि. निकल पड़े। उनकी गम्भीर विद्वत्ता, शास्त्रज्ञान और दिग्विजय की कहानी उत्तर भारत के धार्मिक पुरुषों के कानों में पड़ चुकी थी। महाप्रभु ने विश्राम के लिये गऊघाट पर ही अस्थायी निवास घोषित किया। सूरदास ने वल्लभाचार्य के दर्शन की उत्कट इच्छा प्रकट की, आचार्य भी उनसे मिलना चाहते थे। पूर्वजन्म के शुद्ध तथा परम पवित्र संस्कारों से अनुप्राणित होकर सूरने आचार्य के दर्शन के लिये पैर आगे बढ़ा दिये, व चल पड़े। उन्होंने दूर से ही चरण-वन्दना की, हृदय चरण-धूलि-स्पर्श के लिये आकुल हो उठा। आचार्य ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बैठा लिया, उनके पवित्र संस्पर्श सूर के अंग-अंग भगवद्भक्ति की रसामृतलहरी में निमग्न हो गये। सूर ने विनय के पद सुनाये, भक्त ने भगवान् के सामने अपने-आपको पतितों का नायक घोषित कर उनकी कृपा प्राप्त करना चाहा था-यही उस पद का अभिप्राय था। आचार्य ने कहा, 'तुम सूर होकर इस तरह क्यों घिघियाते हो। भगवान् का यश सुनाओं, उनकी लीला का वर्णन करो।' सूर आचार्यचरण के इस आदेश से बहुत प्रोत्साहित हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा कि मैं भगवान् की लीला का रहस्य नहीं जानता। आचार्य ने सुबोधिनी सुनायी, उन्हें भगवान् लीला का रस मिला, वे लीला-सम्बन्धी पद गाने लगे। आचार्य ने उन्हें दीक्षा दी। वे तीन दिनों तक गऊघाट पर रहकर गोकुल चले आये, सूरदास उनके साथ थे। गोकुल में सूरदास नवनीतप्रियका नित्य दर्शन करके लीला के सरस पद रचकर उन्हें सुनाने लगे। आचार्य वल्लभके भागवत-पारायण के अनुरूप ही सूरदास लीलाविषयक पद गाते थे। वे आचार्य के साथ गोकुल से गोवर्धन चले आये, उन्होंने श्रीनाथ जी का दर्शन किया और सदा के लिये उन्हीं की चरण-शरण में जीवन बिताने का शुभ संकल्प कर दिया। श्रीनाथ जी के प्रति उनकी अपूर्व भक्ति थी, आचार्य की कृपा से वे प्रधान कीर्तनकार नियुक्त हुए।

गोवर्धन आने पर सूर ने अपना स्थायी निवास चन्द्रसरोवर के सन्निकट परासोली में स्थिर किया। वे वहाँ से प्रतिदिन श्रीनाथ जी का दर्शन करने जाते थे और नये-नये पद रचकर उन्हें बड़ी श्रद्धा और

भक्ति से समर्पित करते थे। धीरे-धीरे ब्रज के अन्य सिद्ध महात्मा और पुष्टिमार्ग के भक्त कवि नन्ददास, कुम्भदास, गोविन्ददास आदि से उनका सम्पर्क बढ़ने लगा। भगवद्भक्ति की कल्पलता की शीतल छाया में बैठकर उन्होंने सूरसागर-जैसे विशाल ग्रन्थ की रचना कर डाली। आचार्य बल्लभ के लीला प्रवेश के बाद गोसाईं विठ्ठल सूरदास की अष्टछाप में स्थापना की। वे प्रमुख कवि घोषित हुए। कभी-कभी परासोली वे नवनीतप्रिय के दर्शन के लिये गोकुल भी जाया करते थे।

एक बार संगीत-सम्राट् तानसेन अकबर के सामने सूरदास एक अत्यन्त सरस और भक्तिपूर्ण पद गा रहे थे। बादशाह पदकी सरसतापर मुग्ध हो गये। उन्होंने सूरदास से स्वयं मिलने की इच्छा प्रकट की। उस समय आवश्यक राजकार्य से मथुरा भी जाना था। वे तानसेन के साथ सूरदास से संवत् 1623 वि. में मिले। उनकी सहृदयता और अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर सूरदास ने पद गाया, जिसका अभिप्राय यह था कि 'है मन! तुम माधव से प्रीति करो।' अकबर ने परीक्षा ली, उन्होंने अपना यश गाने को कहा। सूर तो राधा-चरण-चारण-चक्रवर्ती श्रीकृष्ण के गायक थे, वे गाने लगे-

**नहिन रहयो हिय महँ ठौर। नंदनंदन अछत कैसें आनिए डर और।।**

अकबर उनकी निःस्पृहतापर मौन हो गये। भक्त सूर के मन में सिवा श्रीकृष्ण के दूसरा रह की किस तरह पाता। उनका जीवन तो रासेश्वर, लीलाधाम श्रीनिकुंजनायक के प्रेम-मार्ग पर नीलाम हो चुका था।

सूरदास एक बार नवनीतप्रियका दर्शन करने गोकुल गये, वे उनके श्रृंगार का ज्यों-का त्यों वर्णन कर दिया करते थे। गोसाईं विठ्ठलनाथ के पुत्र गिरधरजी ने गोकुलनाथ के कहने से उस दिन सूरदास की परीक्षा ली। उन्होंने भगवान् का अद्भुत श्रृंगार किया, वस्त्र के स्थान पर मोतियों की मालाएँ पहनायीं। सूरने श्रृंगार का अपने दिव्य चक्षु से देखकर वर्णन किया। वे गाने लगे-

**देखे री हरि नंगम नंगा।**

**जलसुत भूषन अंग बिराजत, बसन हीन छबि उठत तरंगा।।**

**अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।**

**किलकत दधिसुत मुख ले मन भरि, सूर हँसत ब्रज जुवतिन संग।।**

भक्त की परीक्षा पूरी हो गयी, भगवान् ने अन्धे महाकवि की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखी, वे भक्त के हृदय कमलपर नाचने लगे, महागायकी के संगीत - माधुरी से रासरसोन्मत्त नन्दनन्दन प्रमत्त हो उठे, कितना माधुर वर्णन था उनके स्वरूप!

सूरदासजी त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। श्री वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी मानसिक भगवत्सेवा सिद्ध थी। वे महाभागवत थे। उन्होंने अपने उपास्य श्रीराधारानी और श्री कृष्ण का यश-वर्णन ही श्रेय मार्ग समझा। गोपी-प्रेमकी ध्वजा भारतीय काव्य-साहित्य में फहराने में थे वे अग्रगण्य स्वीकार किये जाते हैं।

उन्होंने पचासी साल की अवस्था में गोलोक प्राप्त किया। एक दिन अन्तिम समय निकट जानकर सूरदास ने श्रीनाथजी की प्रत्येक झाँकी का दर्शन करते थे। गोसाईं विट्ठल श्रृंगार -झाँकी में उन्हें उपस्थित देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्यामसुन्दर की ओर देखा, प्रभु ने अपने परम भक्त का पद नहीं सुना था, सूरदास जी उन्हें नित्य पद सुनाया करते थे। कुम्भनदास, गोविन्ददास आदि चिन्तित हो उठे। गोसाईं जी ने करुण स्वर से कहा-'आज पुष्टिमार्ग का जहाज जानेवाला है। जिसको जो कुछ लेना हो, वह ले ले।' उन्होंने भक्त मण्डली को परासोली भेज दिया और राजभोग समर्पित कर वे कुम्भनदास, गोविन्ददास और चतुर्भुज आदि के साथ स्वयं गये। इधर सूर की दशा विचित्र थी। परासोली आकर उन्होंने श्रीनाथजी की ध्वजा को नमस्कार किया। उसी की ओर मुख करके चबूतरेपर लेटकर सोचने लगे कि यह काया पूर्णरूप से हरि की सेवामें नहीं प्रयुक्त हो सकी। वे अपने दैन्य और विवशता का स्मरण करने लगे। समस्त लौकिक चिन्ताओं से मन हटाकर उन्होंने श्रीनाथ जी और गोसाईं जी का ध्यान किया। गोसाईंजी आ पहुँचे, आते ही उन्होने सूरदास का कर अपने हाथ में ले लिया। महाकवि ने उनकी चरण-वन्दना की। सूरने कहा कि 'मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।' वे पद गाने लगे-

**खंजन नैन रूप रस माते।**

**अतिसय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।।**

**चलि चलि जात निकट सवननि के, उलटि पलटि ताटक फँदाते।**

**सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते।।**

अन्त समय में उनका ध्यान युगलस्वरूप श्रीराधामनमोहन में लगा हुआ था। श्रीविट्ठलनाथ के यह पूछने पर कि 'चित्तवृत्ति' कहाँ है ?' उन्होंने कहा कि 'मैं राधारानी की वन्दना करता हूँ, जिससे नन्दनन्दन प्रेम करते हैं।'

चतुर्भुजदास ने कहा कि 'आपने असंख्या पदों की रचना की, पर श्रीमहाप्रभु का यश आपने नहीं वर्णन किया।' सूर की गुरु-निष्ठा बोल उठी कि 'मैं तो उन्हें साक्षात् भगवान् का रूप समझता हूँ, गुरु और भगवान् में तनिक भी अन्तर नहीं है। मैंने तो आदि से अन्त तक उन्ही का यश गाया है।' उनकी रसनाने गुरु-स्तवन किया।

भरोसो दृढ़ इन चरनति केरो।  
श्री वल्लभ नख चंद्र छटा बिनु सब जग माझ अँधेरो।।  
साधन नाहिं और या कलि में जासों होय निबेरा।  
'सूर' कहा कहै द्विबिधि आँधरो बिना मोल को चेरा।।

चतुर्भुजदास की विशेष प्रार्थनापर उन्होंने उपस्थित भगवदीयों को पुष्टिमार्ग के रस का अनुभव होता है। इस मार्ग में केवल प्रेम की ही मर्यादा है।' सूरदास ने श्रीराधाकृष्ण की रसमयी छवि का ध्यान किया और वे सदा के लिये ध्यानस्थ हो गये।

“जिनके हृदय में लोभ, क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकता, मोहन जिनको बेसोह नहीं कर सकता, जो किसी से डाह नहीं करते, बल्कि उनसे से जो डाह करते हैं उनकी वे परवाह नहीं करते। ऐसे निरंकारी, क्षमाव्रतधारी, पर-उपकारी, सदाचारी ब्रह्मचारी होते हैं सन्त।”

-महिर्षि संतसेवी परमहंस जी